अमर उजाला

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

नई दिल्ली ■ शनिवार, 16 नवंबर 2019

बुद्धिमान सिर्फ इसलिए बुद्धिमान हैं क्योंकि वह प्रेम करते हैं जबकि मूर्ख समझते हैं कि वह प्रेम को समझ सकते हैं ...
पाउलो कोएल्हो, ब्राजील के उपन्यासक

जिस विलक्षण गणितज्ञ वशिष्ठ नारायण सिंह ने कभी आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को चुनौती देकर सनसनी फैला दी थी, हमने उचित इलाज और देखभाल के अभाव में उन्हें खो दिया।

विस्मृति में विदा

आर्यभट्ट और श्रीनिवास रामानुजन की श्रेणी के गणितज्ञ वशिष्ठ नारायण सिंह ने लंबी बीमारी और उससे भी लंबी उपेक्षा के बाद जब आंखें मूंदीं, तब भोजपुर के इस लाल के पार्थिव शरीर को ले जाने के लिए पटना के सबसे बड़े अस्पताल में कोई एंबुलेंस नहीं थी। लेकिन जो लोग इस दिग्गज गणितज्ञ के अन्यथा लाचार जीवन के बारे में जानते हैं, वे तस्दीक करेंगे कि यह उनके लिए कोई नई चीज नहीं थी। उनका शुरुआती जीवन विलक्षण प्रतिभा के चौंधिया देने वाले उदाहरणों से भरा पड़ा था, चाहे पटना विश्वविद्यालय द्वारा उनके दाखिले के लिए नियम बदलना हो, कक्षा में गणित के प्रोफेसर को उनसे ज्यादा फॉर्मूले बताकर नाराज कर देना हो, नासा में अपोलो मिशन के दौरान कंप्यूटरों के अचानक फेल हो जाने पर सटीक गणना करके बताना हो या आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को चुनौती देना हो। इन्हीं वजहों से बर्कले यूनिवर्सिटी ने उन्हें 'जीनियसों का जीनियस' कहा था। लेकिन मानसिक बीमारी से पीड़ित होने, भारत लौटने और पत्नी से तलाक हो जाने के बाद का उनका जीवन अकेलेपन और उपेक्षा से ही भरा हुआ था। पैंतीस के बाद के उनके जीवन को हम इलाज के लिए जाते हुए उनके ट्रेन से गायब हो जाने, वर्षों बाद अपनी ससुराल के पास एक ढाबे में जूठन चुनकर खाने और पटना के मुख्यमंत्री निवास में मुख्यमंत्री से चवन्नी मांगने के लिए ही जानते हैं। कहा जाता है कि अमेरिका में अपने साथ हुए भेदभाव और वैवाहिक जीवन के तनाव ने उन्हें मानसिक बीमारी दे दी थी। लेकिन अपने देश में सरकारी उपेक्षा और सामाजिक उदासीनता तो उनके लिए और भी कचोटने वाली थी। वह सिजोफ्रेनिया से पीड़ित थे, जिसमें व्यक्ति यथार्थ से कट जाता है और लोगों को पहचानना बंद कर देता है। लेकिन इस महान गणितज्ञ को न पहचानने वाला, उनकी कद्र न करने वाला यह समाज भी क्या सिजोफ्रेनिया से

पीड़ित नहीं था! आइंस्टीन के सिद्धांत को चुनौती देने वाली अपनी थीसिस को अगर वह निष्कर्ष तक पहुंचा पाते, तो वह बहुत बड़ी उपलब्धि होता। पर बीमार वशिष्ठ नारायण के काम को समाज या सरकार द्वारा संभालना तो दूर, उनके इलाज के लिए मदद तक नेतरहाट ऑल्ड ब्वॉयज एसोसिएशन कर रहा था। सच तो यही है कि सही इलाज और देखभाल के अभाव में हमने एक विश्व स्तरीय गणितज्ञ को खो दिया है।

जंगल पर अधिकार का अनथक संघर्ष

एफआरए वनवासियों के अधिकारों के लिए लंबे जमीनी आंदोलन का नतीजा है, जिनके अधिकार औपनिवेशिक शासन के दौरान राज्य के जंगलों के समेकन के दौरान दर्ज नहीं किए गए थे। वनाधिकार पर दावे से अंतिम सुनवाई 26 नवंबर को होगी।

चिपको आंदोलन को भारत का पहला पर्यावरण आंदोलन कहा जाता है, जिसने इस वर्ष छियालिस वर्ष पूरे कर लिए हैं। हालांकि भारत में पर्यावरण आंदोलन का इतिहास इससे कहीं अधिक पुराना है। ब्रिटिश राज के विरोध में जमीनी स्तर के शुरुआती विरोध में इसकी शिनाख्त की जा सकती है। मसलन, 1859-63 के दौरान नील की खेती के विरोध में बंगाल के किसान विद्रोह में पारिस्थितिकी संबंधी चिंता भी प्रच्छन्न रूप में शामिल थी। गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन में भी पारिस्थितिकी तंत्र और लोगों की चिंताएं शामिल थीं, जो देश के करीब सात लाख गांवों में बसे हुए हैं। उन्होंने गांवों को आत्मनिर्भर बनाने की वकालत करते हुए औद्योगिकीकरण का विरोध किया था।

व्रतोती सॅय

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र निर्माण के लिए भारी-भरकम आधारभूत संरचना की जरूरत महसूस हुई और इसके फलस्वरूप बड़े बांधों और इस्पात संयंत्रों को महत्व दिया गया। औद्योगिकीकरण की इस तेजी का असर जल, जंगल व जमीन पर पड़ा और पर्यावरण आंदोलनों की लहर चल पड़ी, जिनमें नर्मदा बचाओ आंदोलन, अप्पिको आंदोलन और साइलेंट वैली आंदोलन शामिल हैं। हाल के आंदोलनों में ओडिशा के नियमगिरि और तमिलनाडु के तुतुकोडी में कॉरपोरेट दिग्गज वेदांता के खिलाफ हुए आंदोलन शामिल हैं। इन आंदोलनों की जड़ में विभिन्न तरह के अन्यायों और गैरबराबरियों की परतें होती हैं और इन आंदोलनों में आदिवासियों की भूमिका अहम होती है। पर्यावरण न्याय आंदोलन, जिसे आमतौर पर पर्यावरण आंदोलन कहा जाता है, की जड़ में पारिस्थितिकी वितरण संघर्ष (ईडीसी) हैं। ये संघर्ष शक्ति और आय में गैरबराबरी से उपजी पर्यावरणीय लागत और लाभ के इर्द-गिर्द होने वाले संघर्ष से जुड़े हैं और व्यापक संदर्भ में इसमें नस्ल, वर्ग, जाति और लैंगिक असमानताएं अंतर्निहित हैं। उन्हें प्राकृतिक संसाधनों के अनुचित उपयोग

और प्रदूषण के अन्यायपूर्ण बोझ से पैदा हुए सामाजिक संघर्ष के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। पिछले पांच दशकों में ये विकसित हुए और हाल के वर्षों में ये नए स्थानिक और प्रतीकात्मक स्थानों पर हमले कर रहे हैं। पारिस्थितिकी वितरण से संबंधित ये संघर्ष सिर्फ ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं रहे। इसके बजाय विभिन्न संदर्भों और समूहों में फैल रहे हैं। मसलन गोवा के बंद मोरमुगाव बंदरगाह में कोयला आयात किए जाने का विरोध या फिर मुंबई में मेट्रो रेल से प्रभावित हो रहे आरे जंगल को बचाने के लिए हुआ प्रदर्शन, जो कि शहर की आखिरी हरित पट्टी है।

हम दावे से यह नहीं कह सकते कि पिछले पांच दशकों में भारत में पारिस्थितिकी वितरण से संबंधित कितने संघर्ष हुए। लेकिन एन्वायर्नमेंटल जस्टिस एटलस (ईजेएटलस) के मुताबिक पर्यावरण न्याय आंदोलनों में भारत सबसे आगे है। इसके मुताबिक भारत में ऐसे तीन सौ संघर्ष रिकॉर्ड में दर्ज किए गए। भारत में इन संघर्षों में 57 प्रतिशत से अधिक पर्यावरणीय न्याय आंदोलनों में आदिवासी समुदाय जुटे हुए हैं। इस तरह के आंदोलनों में आदिवासियों के शामिल होने से ऐतिहासिक बहिष्कार और हाशिये के कारण उत्पीड़न के कई स्तर बढ़ जाते हैं। इसे उस सघन और ऐतिहासिक प्रक्रिया के विश्लेषण से समझा जा सकता है, जिसके जरिये उन्हें दूसरा बनाया गया, उन्हें कोई अधिकार नहीं दिया गया, उन्हें ऐसा वर्ग माना गया जिसके साथ भेदभाव किया जा सकता है और उनका उत्पीड़न दंड मुक्त हो सकता है।

इसके बावजूद उन्होंने जल, जंगल और जमीन को बचाने के लिए संघर्ष को निरंतर जारी रखा है और जमीनी स्तर पर इसी एकजुटता के कारण ही जमीन पर आदिवासियों के अधिकार से संबंधित महत्वपूर्ण कानून पारित हो सका। इस कानून को अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 या वनाधिकार कानून (एफआरए) के रूप में जाना जाता है, जिसने आदिवासियों और अन्य परंपरागत वनवासियों के साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को स्वीकार किया है। यह वन भूमि और सामुदायिक वन संसाधनों पर पारंपरिक अधिकारों को सुरक्षित करने और लोकतांत्रिक समुदाय आधारित वन प्रशासन की स्थापना पर जोर देता है।

एफआरए वनवासियों के अधिकारों को रिकॉर्ड करने के लिए हुए राष्ट्रीय जमीनी आंदोलन का नतीजा है, जिनके अधिकार औपनिवेशिक शासन के दौरान राज्य के जंगलों के समेकन के दौरान दर्ज नहीं किए गए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इनमें से कई समुदायों को औद्योगिक और संरक्षण संबंधी परियोजनाओं के कारण बेदखल किया गया, वह भी उन्हें वन भूमि पर अतिक्रमण करने वाला बताकर उनका पुनर्वास किए बिना। एफआरए में दी गई पहचान और सत्यापन की प्रक्रिया ही एकमात्र कानूनी प्रक्रिया है, जिसके जरिये जमीन मालिकों और वन पर उनके अधिकार का निर्धारण हो सकता है। यह इस कानून के लिए एक मजबूत औजार का काम करती है, क्योंकि जब तक पहचान और सत्यापन की प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती, कंपनियां या राज्य कानूनी रूप से अपनी परियोजना शुरू नहीं कर सकते। हालांकि पिछले दस वर्षों के दौरान विभिन्न राज्यों में ऐसे अनेक मामले सामने आए हैं, जब प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। कई मामलों में तो एफआरए का साफ-साफ उल्लंघन किया गया।

इसी वर्ष फरवरी में सर्वोच्च अदालत के एक फैसले से तकरीबन एक करोड़ आदिवासियों के सिर पर बेदखल होने की तलवार लटक गई थी, जब वनाधिकार के उनके दावों को खारिज कर दिया गया था। इससे पर्यावरण कार्यकर्ताओं और आदिवासी समुदायों को धक्का लगा था। इस मामले में सुनवाई कई बार टली है। 12 सितंबर, 2019 को हुई सुनवाई में सिक्किम को छोड़कर बाकी सारे राज्यों ने अपना पक्ष प्रस्तुत कर दिया है। इस पर अंतिम सुनवाई 26 नवंबर को होगी। एफआरए के प्रभाव से संबंधित एक रिपोर्ट के मुताबिक सामुदायिक वन संसाधन अधिकार से संबंधित सिर्फ तीन फीसदी दावों का ही निपटारा हो सका है।

- लेखिका, ऑटोनमस यूनिवर्सिटी बार्सिलोना के इंस्टीट्यूट ऑफ एन्वायर्नमेंटल साइंस ऐंड टेक्नोलॉजी से संबद्ध हैं।

फैक्ट फाइल

यातना शिविर से अब मिली है मुक्ति

अपनी कहानी

>> बहरोज बूचानी

आप जानते हैं? पहली बार, मैं सोच रहा था कि मैं बच गय
क्योंकि जब मैं मानुस या पोर्ट मोरेस्बी के हिरासत केंद्रों में था,
इस बारे में नहीं सोचा। वहां मैं सोचता था कि कैसे स्वतंत्र हो
बाहरी दुनिया को मानुस द्वीप की स्थिति से अवगत कराना

छह साल से ज्यादा समय हो गया भागते हुए, अब मैं थक गया हूं। मुझे उस से दूर होने में खुशी है। मुझे लगता है कि मैं स्वतंत्र हूं। मेरा जन्म (23 1983) पश्चिमी ईरान के इलम में हुआ। उस वक्त इराकी नास्तिकों और कट्टरपंथियों के बीच कुर्द में बड़े पैमाने पर युद्ध चल रहा था। मैंने तेह मोडारस विवि और तारबत मोएल्म विवि से स्नातक किया। ईरानी स्पॉट्र्स के लिए स्वतंत्र पत्रकार के रूप में काम करने से पहले पढ़ाई के दौरान विवि के छात्र समाचार पत्र के लिए अपना पत्रकारिता लेखन शुरू किया।

पत्रकारिता बन गई विस्थापन की वजह

मैंने पश्चिम-एशिया व की राजनीति, अल्पसंख्यक अधिकारों औ संस्कृति के अस्तित्व पर कई लेख लिखे। इसके बाद कुर्दिश पत्रिका के सह-स्थापना और प्रकाशन किया, अपनी राजनीतिक और सामाजिक साम कारण पत्रिका ने ईरानी अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया। फरवरी में, वेरा के कार्यालयों पर इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड्स ने छापा मारा, 11 सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया, जिनमें से कई को जेल में डाल गया। गिरफ्तारी की खबर फैलने के बाद मैं ईरान चला गया और दक्षि एशिया के रास्ते इंडोनेशिया पहुंच गया।

नरक हैं मानुस द्वीप के हिरासत केंद्र

जुलाई 2013 में करीब 60 शरणार्थियों के साथ मैं इंडोनेशिया से ऑस्ट्र जाने वाली एक नाव में सवार हुआ, पर बीच रास्ते वह डूब गई, कई लो आंखों के सामने डूब गए, इसके बाद ऑस्ट्रेलियाई नौसेना की एक नाव बचाया और फिर हमें मानुस द्वीप के हिरासत केंद्र में भेज दिया गया। मानु के हिरासत केंद्र में हर किसी की दर्दनाक यादें हैं, हम उन्हें कभी भी उस इ नहीं छोड़ सकते। कई लोगों की मेरी आंखों के सामने गार्डों ने गोली मार गला घोंटकर हत्या कर दी। कुख्यात चौका एकांत कारावास ब्लॉक में दो ब भी कई दिनों तक रखा गया और यातनाएं दी गईं। मैंने शिविर के बाहर प और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं से संपर्क बनाया और शिविर के मानवाधिकारों के हनन के बारे में जानकारी एकत्र कर एक गुप्त मोबाइल फ माध्यम से अंतरराष्ट्रीय समाचार संगठनों और संयुक्त राष्ट्र को भेजा।

उम्मीद है अमेरिका शरण देगा

मैंने ईरानी फिल्म निर्माता अरश कमली सरस्वतानी के साथ, डॉक्यूमेंटरी *: प्लीज टेल अस द टाइम* बनाई और मानुस द्वीप में शरणार्थियों की दुर्दशा में कई लेख लिखे। इसके बाद मैंने व्हाट्सऐप पर अपने संस्मरण मीडिया क जो *नो फ्रेंड बट द माउंटेन: राइटिंग फ्रॉम द मानुस प्रिजन* नाम की एक के रूप में संकलित हुए। इस किताब ने जनवरी 2019 में विक्टोरियन प्राइ लिटरेचर और विक्टोरियन प्रीमियर का पुरस्कार जीता। मैं पापुआ न्यू (पीएनजी) या ऑस्ट्रेलिया के आव्रजन की प्रक्रिया से मुक्त होना चाहता सिर्फ ऐसी जगह जाना चाहता हूं जहां मैं एक व्यक्ति रहूं, न कि केवल एक या लेबल लगा शरणार्थी। जल्द से जल्द अमेरिका में बसने की उम्मीद क मैंने पीएनजी छोड़ दिया है, क्राइस्टचर्च में आयोजित एक साहित्यिक समा लिए मुझे न्यूजीलैंड में रहने के लिए एक महीने का वीजा मिला है।

-मानुस द्वीप (पपुआ न्यू गिनी) के शरणार्थियों की आवा वाले शरणार्थी पत्रकार के विभिन्न साक्षात्कारों पर आ

सच